विशेष लेख

# ट्यूनीशिया, मिस्र और अरब जगत में भूचाल

**एजाज अहमद** विश्वप्रसिद्ध मार्क्सवादी विचारक एवं समाजशास्त्री हैं। उनका यह लेख **'ऑटम ऑफ पेट्रियार्क'** शीर्षक से **'फ्रंटलाइन'** के फरवरी अंक में प्रकाशित हुआ था। उसे **'देश–विदेश'** ने हिंदी में प्रकाशित किया है। लेख का अनुवाद **ज्ञानेन्द्र** ने किया है। चूंकि हिंदी पाठकों तक इस महत्त्वपूर्ण लेख का अधिक से अधिक प्रसार हो सके, इसलिए हम 'फ्रंटलाइन' और 'देश–विदेश' के प्रति आभार प्रकट करते हुए इस लेख के सबसे महत्त्वपूर्ण अंशों को प्रकाशित कर रहे हैं।

1 फ़रवरी को काहिरा से ले कर पोर्ट सईद तक करीब छ: शहरों में 20 लाख लोगों ने जुलूस निकाला और 4 फ़रवरी, शुक्रवार को दुबारा '10 लाख लोगों का जुलूस' निकाले जाने का एलान किया गया। प्रदर्शनकारियों ने इसे राष्ट्रपति मुबारक और उसके करीबियों के लिए 'प्रस्थान का दिन' बना देने का निश्चय किया है। इस मौके पर और भी हिंसा भड़क सकती है जो शायद सेना को अपने हाथ आजमाने को लाचार कर सकती है। क्या सेना तब भी चुपचाप खड़ी तमाशा देखती रहेगी? या फ़िर सेना के जनरल हुस्नी मुबारक के लिए सऊदी अरब में एक बंगले की व्यवस्था कर देंगे, जहां वह अपने हम-तकदीर, ट्यूनीशियाई तानाशाह जइन-अल आबिदीन बेन अली के साथ मिल कर वक्त गुजार सकें? यह निर्णय काहिरा में नहीं, बल्कि वाशिंगटन और तेल अबीब में लिया जाएगा।

**धर्मनिरपेक्ष शक्तियों का आगे बढ़ता अभियान**

यह आधुनिक अरब इतिहास की अकेली इतनी बड़ी बगावत है, लेकिन कोई भी निश्चय के साथ नहीं कह सकता कि इसके परिणाम क्या होंगे। क्या अर्थव्यवस्था और समाज में बुनियादी ढांचागत बदलाव आयेंगे या फ़िर यह एक कॉस्मेटिक सर्जरी बन कर रह जाएगी? कहना मुश्किल है। लोकतंत्र, मानवाधिकार और भ्रष्टाचार-मुक्त शासन जैसे एकदम खास धर्मनिरपेक्ष मुद्दों पर केंद्रित इस क्रांतिकारी उभार ने इस 'पश्चिमोन्मुख' मिथक को पहले ही विराम दे दिया है कि मुस्लिम जनता केवल धार्मिक उपदेशों के जरिये ही गोलबंद की जा सकती है। साथ ही इसने अमेरिका-प्रायोजित तानाशाहों के इस दावे को भी झुठला दिया है कि अरब जगत में तेजी से फैल रहे 'इस्लामी-फासीवाद' (अमेरिका द्वारा गढ़ा गया शब्द) का मुकाबला करने की शक्ति केवल उनके पास ही है। वास्तव में संपूर्ण अरब जगत में आज महान फ्रांसीसी क्रांति के शानदार पुराने मूल्य - स्वतंत्रता, समानता और भाईचारा तेजी से फैल रहे हैं।

यह पूरा आंदोलन बुनियादी तौर पर इस हद तक धर्मनिरपेक्ष है कि अरब जगत में अब तक सबसे बड़े इस्लामी गुट, मिस्र स्थित मुस्लिम ब्रदरहुड संगठन ने भी आंदोलन की शुरुआत से ही यह घोषित कर रखा है कि यह जन-उभार इस्लाम के लिए नहीं है, बल्कि मिस्र के लिए है और नयी व्यवस्था में ब्रदरहुड अपने लिए कोई विशेष स्थान नहीं चाहता। वास्तव में, उन्होंने चार धर्मनिरपेक्ष समूहों के साथ मिल कर एक गठबंधन कायम किया है और सामूहिक तौर पर मुहम्मद अल बरदेई को अपनी ओर से सेना से बातचीत करने के लिए अधिकृत किया है। सर्वविदित है कि अल बरदेई पूरी तरह धर्मनिरपेक्ष और पश्चिमी ढंग-ढर्रे वाले टेक्नोक्रेट हैं।

इसी प्रकार ट्यूनीशिया की सबसे बड़ी इस्लामी पार्टी, इस्लामिक इन्नहदा (नाहदा अरबी का शब्द है जिसका जिसका अर्थ है पुनर्जागरण) के अनुभवी नेता राशिद घनौची ने दो दशकों से भी ज़्यादा लंबे निर्वासन से ट्यूनिस वापस लौटने के बाद केवल एक ही मांग रखी है कि उनकी पार्टी को कानूनी मान्यता दी जाये और उसे देश की लोकतांत्रिक प्रक्रिया में भाग लेने की इजाजत दी जाये। उन्होंने 'फाइनेंसियल टाइम्स' को यह भी बताया कि 'लोकतंत्र से कम्युनिस्टों को अलग नहीं करना चाहिए। यह हमारे लिए नैतिक नहीं होगा कि धर्मनिरपेक्ष सरकार से कहें वह हमें स्वीकार कर ले, हालांकि एक बार सत्ता में आने के बाद हम उनका सफाया कर देंगे।' उनकी पार्टी ने एक संविधान सभा के गठन की औपचारिक मांग की है 'जिसमें तमाम राजनीतिक प्रवृत्तियों, नागरिक संस्थाओं, मसलन ट्रेड यूनियनों, वकीलों के एसोसियेशन और बेरोजगार स्नातकों की प्रतिनिधि संस्थाओं का प्रतिनिधित्व हो। इन सबने क्रांति में इस उद्देश्य से अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी कि देश में संसदीय प्रणाली लागू करने के लिए एक लोकतांत्रिक संविधान बनाया जायेगा, जिसके तहत सत्ता का यथासंभव बड़े पैमाने पर वितरण और विकेंद्रीकरण किया जाएगा।' यहां मैं यह जोड़ना चाहूंगा कि नये संविधान की यह मांग जो ट्यूनीशिया के राजनीतिक वर्णक्रम में सबसे व्यापक सांझी मांग है, हमें अत्यंत सम्मोहक रूप से बेनेजुएला और बोलिविया की याद दिलाती है, भले ही ट्यूनीशिया की कार्यसूची अपेक्षतया निस्तेज है और कुल मिला कर यह एक उदारवादी सांचे में सिमटी दिखाई देती है।

घनौची और उनकी पार्टी ने यह अवस्थिति इसलिए ली क्योंकि वे जानते हैं कि ट्यूनीशिया के राजनीतिक वर्णक्रम में इस्लामवाद अपेक्षतया एक कमजोर धारा है। ट्रेड यूनियनों के महासंघ का प्रतिनिधित्व करने वाली ताकतें इससे कहीं ज़्यादा तादाद में और अधिक शक्तिशाली हैं। इनमें ट्यूनीशियाई मज़दूरों का आम संगठन और उससे संबधित पार्टी, डेमोक्रेटिक फोरम फॉर लेबर और यूनिटी पार्टी तथा नवगठित '14 जुलाई मोर्चा' जिसमें ट्यूनीशियाई कम्युनिस्ट मज़दूर पार्टी, देशभक्त लोकतांत्रिक लेबर पार्टी, वाम मज़दूर लीग, नासिरवादी यूनियनवादी आंदोलन, जनतांत्रिक राष्ट्रवादी आंदोलन, बासिस्ट करेन्ट, जनतांत्रिक राष्ट्रवादी (अल-वाताद) और स्वतंत्र वामपंथी शामिल हैं। यह महत्त्वपूर्ण बात है कि ट्यूनीशियाई कम्युनिस्ट मज़दूर पार्टी ने भी इन्तहदा से काफी मिलती-जुलती अवस्थिति अपनायी - 'वे सभी ताकतें जिन्होंने तानाशाह को उखाड़ फेंकने में प्रभावी और निर्णायक भूमिका निभायीं, चाहे वह राजनीतिक ताकतें हों या ट्रेड यूनियन, मानवाधिकारवादी या सांस्कृतिक - चाहे वे संगठित हो अथवा नहीं, वे सभी जनता के साथ रहे हैं और उन्हें ट्यूनीशिया के भविष्य के निर्माण में शामिल किया जाना चाहिए। इसके अलावा और किसी भी तरह उनका प्रतिनिधित्व सुनिश्चित नहीं किया जा सकता।'

इस तरह अगर मौजूदा आम बगावत के इस तूफान के मद्देनजर ट्यूनीशिया में या किसी अन्य अरब देश में एक सच्ची लोकतांत्रिक व्यवस्था कायम होती है और यदि एक स्वतंत्र और व्यापक आधार वाली असली प्रक्रिया से गुजर कर नया संविधान और सरकार अस्तित्व में आती है तो धार्मिक नहीं, बल्कि अरब राष्ट्रवादी और धन के पुनर्वितरण वाली न्यायसंगत विचारधारा अनिवार्यत: प्रभुत्व प्राप्त कर लेगी, जबकि ट्रेड यूनियनों, कम्युनिस्टों और वाम राष्ट्रवादियों से लेकर इस्लामवादियों तक, तमाम ताकतों को इसके भीतर समुचित प्रतिनिधित्व मिलेगा। यही वह वजह है जिसके चलते साम्राज्यवादी इस तरह की लोकप्रिय भागीदारी वाली लोकतांत्रिक व्यवस्था की इजाजत नहीं देंगे और जहां तक संभव होगा, या तो वे जन उभार को कुचल देंगे या फिर इजराइल समर्थक नवउदारवादी व्यवस्था के ढांचों और कॉरपोरेट सत्ता को बनाये रखते हुए जन उभार की उपलब्धियों को महज वोट देने की प्रक्रिया संबंधी ढकोसले तक सीमित कर देना चाहेंगे। यही वजह है कि ट्यूनीशिया के तानाशाह जइन अल आबीदीन बेन अली के पतन के बाद जो पहला विदेशी उच्चाधिकारी ट्यूनीशिया के दौरे पर गया, वह अमेरिकी सहायक गृहमंत्री जेफ्रे फेल्टमैन था।

**निर्वाचकीय आकांक्षाएं और इलेक्ट्रॉनिक तकनीक**

इस बगावत को अपरिहार्य बनाने वाले आर्थिक संकटों और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर हम बाद में बात करेंगे। पहले यह देखें कि जिस तरह विरोध-प्रदर्शन गांव से शहर तक, एक इलाके से दूसरे इलाके तक और एक देश से दूसरे देश तक फैलते चले गए तथा जिस तरह यह विद्रोह पूरे अरब जगत की परिघटना बन गया, उस पर सूचना युग और कुछ खास तरह की उत्तर-आधुनिक राजनीति की स्पष्ट छाप मौजूद है।

आधुनिक समाज में ज्ञात विरोध-प्रदर्शन और गोलबंदी के सभी ऐतिहासिक रूपों - राजनीतिक पार्टियों, ट्रेड यूनियनों, स्वतंत्र प्रेस और विभिन्न प्रकार के उदारवादी अधिकारों को सभी तानाशाह शासकों ने इतने निर्णायक रूप से और सफलतापूर्वक दबा दिया था या फिर उनके साथ किसी न किसी तरह समझौता किया कि तपे-तपाये राजनीतिक कार्यकर्ताओं के नेतृत्व में चलने वाले राष्ट्रव्यापी मज़दूर बगावत जैसे विद्रोह के ऐतिहासिक तौर-तरीके अपनाना वहां बिल्कुल मुमकिन नहीं था। इसे इस तरह समझा जा सकता है कि आम नागरिकों पर कड़ी नज़र रखने और उन्हें कैद करने वाली इन व्यवस्थाओं ने ऐसे हालत पैदा कर दिये, जिनमें कोई न कोई बुनियादी बदलाव जरूरी था, लेकिन उन्होंने उन तमाम लोगों को, जो एक सकल और सुसंगत क्रांति का सही ढंग से नेतृत्व कर सकते थे, उन्हें या तो बंदी बना लिया या मार डाला या फिर उन्हें देश निकाला दे दिया। इसी का नतीजा है कि यहां हर चीज को पूरी तरह नकार देने वाली एक अनोखी बगावत देखने को मिल रही है। इसमें संदेह नहीं कि दूसरी ताकतों ने भी अलग-अलग समय पर अलग-अलग किस्म की भूमिकायें निभायीं, लेकिन हताशा या वीरता की जिन व्यक्तिगत कार्रवाइयों ने जहां-तहां स्थानीय प्रदर्शनों का नेतृत्व किया, राष्ट्रीय सीमाओं और उनके पार जाकर पूरे अरब जगत में एक व्यापक जन-उभार का रूप केवल तभी लिया जब शहरी और शिक्षित मध्य वर्ग के संगठित जत्थों ने आगे बढ़ कर इसे नेतृत्व दिया। इस उत्तर-आधुनिक युग की आम मनोवृत्ति का शुक्रिया अदा करना होगा कि भले ही इन नौजवानों का क्रांति के लिए जरूरी, श्रम-साध्य सांगठनिक काम से दूर-दूर तक कोई वास्ता नहीं था, फिर भी वे अमेरिकी ढर्रे वाले लोकतांत्रिक प्रचार के तीन शब्दाडंबरी जंतर-मंतरों - मानवाधिकार, लोकतंत्र और भ्रष्टाचार मुक्त शासन सें कमोबेश प्रेरित थे।

अब यह बात एकदम साफ है कि इन सभी देशों में लोकतंत्र की धज्जी उड़ाई गई, मानवाधिकारों का हनन किया गया और भ्रष्टाचार दैत्याकार रूप धारण कर चुका है। इसलिए ये सभी मुद्दे पूर्णत: वैध हैं। लेकिन एक व्यापक प्रवृत्ति यह रही कि इसके लिए व्यापक तौर पर किसी तानाशाह और उसके सगे-संबंधियों, जैसे - ट्यूनीशिया में बेन अली और उसके परिवार को तथा मिस्र में मुबारक और उसके बेटे को या दूसरे देशों में ऐसे ही किसी अन्य व्यक्ति को दोषी माना गया, जबकि इन तानाशाहों की सत्ता की ढांचागत जड़ें और स्रोत अधिकांश ट्विटर क्रांतिकारियों की चेतना के अंग नहीं बन पाये। आगे हम देखेंगे कि कैसे ट्यूनीशिया और मिस्र जैसे देशों की अर्थव्यवस्था को बेलगाम उदारीकरण और मुद्रा-कोष के निर्देशों ने तबाह कर दिया, लेकिन फिर भी ये तानाशाह खुशी-खुशी उन नीतियों को लागू करते जा रहे थे। इसी तरह उनकी विदेश नीतियां भी अमेरिका से निर्देशित होती हैं और उनकी सेना पूरी तरह से पेंटागन के अनुदान पर निर्भर है। वे साम्राज्यवाद की सेवा करते हैं और इसके बदले में उन्हें स्थानीय स्तर पर असीमित तानाशाही शक्तियों से नवाजा जाता है।

इन चाकर तानाशाहों के खिलाफ़ इतने बहादुराना अंदाज में उठ खड़े होने वाले इन मध्यवर्गीय नौजवानों की दुविधा यह है कि वे खुद अमेरिकी उदारवाद की उपज हैं और उनमें से कई नेतृत्वकारी तत्व तो 'फ्रीडम हाऊस नेशनल इम्पावरमेंट फॉर डेमोक्रेसी' और 'इंटरनेशनल सेंटर फॉर नॉन-वायलेंट कन्फिल्क्ट' जैसी अमेरिकी संस्थाओं से प्रशिक्षण और पैसा पाते रहे हैं। इसके बाद वे विभिन्न प्रकार के नागरिक समाज संगठन बनाते या उनसे जुड़ते हैं और वे जानते हैं कि कैसे फेसबुक और ट्विटर समुदायों को जब जैसी जरूरत पड़े, लोकतांत्रिक आंदोलनों के लिए गोलबंद किया जा सकता है। लोकतांत्रिक सुधारों का शब्दाडंबर, जिसकी पुनरावृत्ति वाशिंगटन के उच्च और शक्तिशाली सत्ता केंद्रों से समय-समय पर होती रहती है, उन्हें प्रेरित करता है - जैसा कि बराक ओबामा के 'परिवर्तन' के नारे ने किया, जिस शब्दाडंबर को सारहीन होते हुए भी गजब के आत्मविश्वास के साथ दुहराया जाता रहा है। वे अमेरिका को लोकतंत्र का अग्रदूत समझते हैं और आशा करते हैं कि अगर वे गलियों में खूब शोर-शराबा और बदअमनी फैलायें और अगर वे बड़ी संख्या में प्रदर्शनकारियों की ताकत दिखा सकें, तो ओबामा साहब किसी न किसी तरह मुबारक जैसों को साम्राज्य की सेवा से बर्खास्त कर देंगे। इन बगावतों के कुछ पहलुओं साथ यही ढांचागत समस्या रही है। इसके बावजूद एकदम विस्फोटक पैमाने पर उनकी भागीदारी भी सचमुच बहुत आनंददायक रही है, क्योंकि एक बार शुरू होने के बाद यह प्रक्रिया ऐसे बहुत से तत्वों को अपरिहार्य रूप से सड़कों पर उतार देती है जिनको बहुत आसानी से नियंत्रित करना संभव नहीं होता।

इस क्रांति का सबसे बड़ा हथियार इंटरनेट, और सामान्य भाषा में कहें तो इलेक्ट्रॉनिक मीडिया रहा है। इतना सब कुछ इसलिए संभव हो पाया, क्योंकि सात दिन-चौबीसो घंटे अनवरत चलने वाले समाचार चैनलों, यू ट्यूब, अल-जजीरा और यहां तक कि सेल-फ़ोनों ने ताजा-तरीन घटनाओं के सजीव दृश्य-चित्रों को इतनी तेजी से पूरी दुनिया में फैला दिया। ऐसी ही आश्चर्यजनक तेजी के साथ ई-मेल, एमएमएस, फेसबुक, ट्विटर इत्यादि के जरिये लाखें लोगों के बीच एक साथ संवाद कायम हो सका। क्रुद्ध, निहत्थी जनता को गोलबंद करने के लिए ये सशक्त हथियार हैं, लेकिन यह भी सच है कि असली हथियार उनके दुश्मनों के पास हैं। क्या विद्रोह और दमन के बीच इस संघर्ष का समाधान विद्रोही जनता के हक में होगा और परिणामस्वरूप व्यवस्था में बुनियादी बदलाव होंगे? इसकी कल्पना करना थोड़ा कठिन है।

**(क्रमशः जारी)**